International Journal of Multidisciplinary Trends

E-ISSN: 2709-9369
P-ISSN: 2709-9350
www.multisubjectjournal.com
IJMT 2021; 3(1): 295-299
Received: 05-11-2020
Accepted: 16-12-2020

डॉ. नीरव अडालजा
एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, डॉ. भीम राव अम्बेडकर कॉलेज दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

Corresponding Author:
डॉ. नीरव अडालजा
एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, डॉ. भीम राव अम्बेडकर कॉलेज दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

दलित साहित्य का नया सौन्दर्यशास्त्र

डॉ. नीरव अडालजा

प्रस्तावना

हिन्दी साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र संस्कृत और पाश्चात्य सौन्दर्यशास्त्र पर आधारित है। इसलिए उसकी कसौटियाँ दलित साहित्य के मूल्यांकन में अक्षम साबित होती हैं।

संस्कृत साहित्य का मूल आधार सामन्तवादी एवं ब्राह्मणवादी दृष्टिकोण है। उसी प्रकार पाश्चात्य साहित्य की सौन्दर्यदृष्टि भी पूँजीवादी एवं सामन्तवादी है।

दलित साहित्य की केवल साहित्य के रूप में समीक्षा होनी चाहिए। चूँकि यह दलितों द्वारा रचित साहित्य है इसलिए सहानुभूति का दृष्टिकोण अपनाकर इसकी स्तुति करना पूर्णतः अनुचित है। सवर्ण समीक्षकों के अनुसार इसका साहित्यिक मूल्यांकन साहित्यिक कसौटी के आधार पर ही होना चाहिए। उनका कहना है भले ये दलित साहित्य है लेकिन पाठक इस साहित्य को केवल साहित्य के रूप में ही पढ़ेगा, इसलिए इसकी समीक्षा करते हुए साहित्येतर दृष्टिकोण को नजरअंदाज करना होगा, किन्तु दलित लेखक इस धारणा को नकारते हैं। दलित लेखकों का मत है कि सफेदपोश समीक्षा दलित साहित्य का उचित मूल्यांकन नहीं कर सकती।

निर्मल कुमार फडकुले और नरहर कुरूंदकर का मत है ''दलित साहित्य का सृजन ब्राह्मण भी कर सकता है। उसके लिए लेखक का जन्म गांव की सीमा के बाहर होना चाहिए ऐसा नहीं, क्योंकि दलित साहित्य का आधार किसी एक जाति में पैदा होना ही नहीं है। वह तो सामाजिक प्रतीति में होता है।''[1] ''दलित साहित्य का आधार यहाँ की जाति व्यवस्था है और इस जातिव्यवस्था में पैदा होकर मरने तक गुलामी सहन करने की घुटन दलित साहित्य की प्रेरक शक्ति है – इसलिए दलित साहित्य का सृजन दलितेतर लेखक कर सकता है।''[2] यह मत म.सु. पाटील को स्वीकार्य नहीं है। वे कहते हैं, ''दलित होना इसलिए महत्वपूर्ण है कि इससे उसकी चेतना को एक विशिष्ट रूप मिलता है।''[3] जन्मसिद्ध दलित लेखक का विद्रोह और नकार से युक्त दलित चेतना की अभिव्यक्ति करने वाला साहित्य ही दलित साहित्य है। दलितों का जातीय विशेष अनुभव, कल्पना के बल पर व्यक्त करना संभव नहीं है। आज इस पर सवर्ण समीक्षकों में दो विचारधाराएँ हैं। एक यह कि दलितेतर लेखक कल्पना के बल पर दलित साहित्य लिख सकता है, दूसरी यह कि केवल दलित लेखक ही दलित साहित्य लिख सकता है। इन दोनों में से दूसरी विचारधारा अधिक यथार्थवादी लगती है। पहली मूलतः कल्पना के बल पर आधारित है। क्योंकि ऐसा साहित्य सहानुभूति से नहीं बल्कि स्वानुभूति से उपजा होता है।

दलित साहित्य के मूल्यांकन से पूर्व परम्परावादी समीक्षकों को भारतीय समाज–व्यवस्था, वर्ण–व्यवस्था, जातिभेद, जाति–संघर्ष, विषमताओं, भेदभावों, सामन्ती सोच, ब्राह्मणवादी दृष्टिकोण, अर्न्तविरोधों, आर्थिक, सामाजिक भारतीय मनः स्थितियों, सांस्कृतिक पृष्ठभूमियों का विश्लेषण करना होगा, भारतीय राजनीति को समझकर साहित्य का समाजशास्त्रीय अध्ययन करना होगा। तभी दलित साहित्य का सही और यथार्थ मूल्यांकन हो पाना सम्भव होगा।

प्रेमचन्द ने कहा था, 'हमें सुन्दरता की कसौटी बदलनी होगी। पारम्परिक सौन्दर्यशास्त्र के प्रतिमानों से भिन्न दलित साहित्य के सौन्दर्यशास्त्र की आवश्यकता दलित लेखक महसूस करते हैं।

पारम्परिक सौन्दर्यशास्त्र पंडित जगन्नाथ के ''वाक्यं रसात्मक काव्य''[4] को सूत्र की तरह दोहराता है जबकि दलित लेखकों की दृष्टि में साहित्य आचार्यों द्वारा निर्मित 'रस' अधूरे एवं पूर्वग्रहों से पूर्ण हैं। दलित साहित्य विद्रोह और नकार के संघर्ष से उपजा है। घोषित रसों के द्वारा दलित रचनाओं के इस केन्द्रीय भाव का मूल्यांकन नहीं हो सकता है।

डॉ. एन. सिंह की धारणा है कि ''दलित साहित्य का शब्द सौन्दर्य प्रहार में है, सम्मोहन में नहीं। वह समाज और साहित्य में शताब्दियों से चली आ रही सड़ी–गली परम्पराओं पर बेदर्दी से चोट करता है। वह शोषण और अत्याचार के बीच हताश जीवन जीने वाले दलित को लड़ना सिखाता है, वह सिर पर पत्थर ढोने वाली मजदूर महिला को उसके अधिकारों के विषय में बतलाता है। उसे धर्म की भूल–भुलैया से निकालकर शोषण से मुक्ति का मार्ग दिखाता है। उसके लिए जिस शाब्दिक प्रहार क्षमता की आवश्यकता है, वह उसमें है, और यही दलित साहित्य का शिल्प सौन्दर्य है।''[5]

दलित साहित्य की अर्न्तचेतना में वेदनामूलक संघर्ष भाव की प्रधानता है जो यातना से उपजी है। राजेन्द्र यादव कहते हैं– साहित्य जिन तत्वों से अमर, स्थायी या सार्वभौमिक होता है, उसमें तीन मुझे सबसे प्रमुख लगते हैं – 'संघर्ष, यातना (सफरिंग) और विजन .....'

राजेन्द्र यादव का यह भी मानना है – "जो नया सौन्दर्यशास्त्र बनेगा, वह संघर्ष से शुरू होगा, उस यातना से शुरू होगा, चाहे वह उसका रिअलाइज करने अथवा उस यातना को, उसकी तकलीफ को, उसके भेदक रूप को समझने के रूप में हो, और उसके बाद बदलने की मानसिकता के रूप में हो, जिसे हम संघर्ष कह सकते हैं।" [6] तीसरा – एक स्वप्न के रूप में होगा, हमें करना क्या है? हमें समानान्तर सौन्दर्यशास्त्र देना है, वैकल्पिक समाज बनाना है, यह सारा संघर्ष साहित्य में भी है और समाज में भी।

दलित साहित्य में ये तीनों तत्व विद्यमान हैं। अम्बेडकर–दर्शन एवं विचार ने दलित साहित्य में संघर्षशीलता को तीव्रता दी है। वर्ण–व्यवस्था और भारतीय समाज–व्यवस्था में दलितों पर अमानुषिक उत्पीड़न किया है, उस यातना की निचली तह से उठकर ऊपर आनेवाला दलित लेखक अपने भीतर जिस आँच को अनुभव करता है वह भुक्तभोगी ही समझ सकता है। दलित साहित्य की दिशा और दृष्टि उसे जीवन्त बनाती है।

दलित साहित्य परिवर्तनशीलता के नियमों में विश्वास करता है। प्रकृति हो या मनुष्य का जीवन, उसमें कुछ भी स्थिर नहीं है। न अजर, न अमर। 'आशय' जीवन से सम्बन्ध रखता है। जीवन यानी संघर्ष और उससे जुड़े अनुभव। जैसे–जैसे जीवन बदलता है, अनुभव बदलते हैं, यथार्थ बदलता है। दलित साहित्य में अनुभवों से उत्पन्न आशय निष्ठा ही अधिक है। पारम्परिक साहित्य ने जिसे त्याज्य और निषिद्ध माना है, दलित साहित्य ने उसे अपने अनुभवों के आधार पर प्रमुखता दी है। उन अनुभवों की अभिव्यक्ति के मूल्यांकन के लिए पारम्परिक समीक्षा के मापदंड गलत निष्कर्ष देंगे। क्योंकि पारम्परिक सौन्दर्यशास्त्र में उन अनुभवों के मूल्यांकन और आशयों के विश्लेषण की क्षमता ही नहीं है, फिर मूल्यांकन कैसे होगा? किस आधार पर होगा ?

दलित लेखकों की यह धारणा है कि जीवन दर्शन, अनुभूति और अनुभव वास्तविकता भारतीय साहित्य में कमी आयी ही नहीं। इसलिए समीक्षकों द्वारा स्थापित समीक्षा मूल्य और उनके सौन्दर्य मीमांसा के ढंग अलग हैं जो दलित साहित्य की समीक्षा के लिए सही नहीं है।

दलित साहित्य या पारम्परिक साहित्य का मूल प्रयोजन क्या है – आनन्द के लिए रसोत्पत्ति। यह आनन्द–रस क्षणिक होता है जिसे दलित साहित्य स्वीकार नहीं करता। एक दलित जिस उत्पीड़न को भोगकर दुख, वेदना से साक्षात्कार करता है, वह आनन्दायक कैसे हो सकता है? दलित साहित्य आत्मानुभूति की अभिव्यक्ति करता है इसलिए उसकी श्रेष्ठता शब्दजीवी नहीं है। न शाब्दिक चमत्कारों तक ही सीमित है। अर्थ–गाम्भीर्य दलितों का स्वीकृत जीवन–मूल्य है, जिस पर दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र टिका है।

ये जीवन–मूल्य आखिर है क्या? दलित साहित्य की आन्तरिक ऊर्जा दलित चेतना है जो डॉ. अम्बेडकर के जीवन–दर्शन और बुद्ध के तत्वज्ञान से संचालित है।

दलित विद्वानों द्वारा इन जीवन–मूल्यों को दलित साहित्य में सूक्ष्मता के साथ पिरोया गया है। ये जीवन–मूल्य हैं–

1. समता, स्वतन्त्रता, बन्धुता, न्याय के जीवन–अनुभव, अनुभवजन्य आशय, तथा उस आशय की अर्थपूर्ण अभिव्यक्ति।
2. संस्कृति और धर्म के नाम पर वास्तविकता को छिपाकर रखे गये ढोंग को नकारना।
3. कल्पनाजन्य प्रतिमानों का निषेध। जैसे 'अमृत' मधुर पेय की कल्पना लेकिन उसका आस्वाद किसी ने नहीं जाना।
4. नित्य परिवर्तनीयता के आधार पर जीवन मूल्यों का मूल्यांकन।
5. बन्धन–मुक्त अभिव्यक्ति और अनुभवों का सच्चापन, जैसा देखा, भोगा उसका वैसा चित्रण। शब्द केवल माध्यम है। शाब्दिक आडम्बर निर्माण में असमर्थ।

दलित साहित्य 'आशय' को महत्व देता है। अभिव्यक्ति और शिल्प दूसरे स्थान पर आता है। जीवन–अनुभवों की प्रामाणिकता 'आशय' को अर्थ–गम्भीर बनाती है। यह अर्थ–गाम्भीर्य डॉ. अम्बेडकर–दर्शन के विचार तत्व पर आधारित होना चाहिए। इसलिए दलित साहित्य के सौन्दर्यशास्त्र का स्वरूप पारम्परिक सौन्दर्यशास्त्र से भिन्न है।

हिन्दी के कुछ समीक्षक, लेखक इस बात से चिन्तित हैं कि दलित लेखक अपना सौन्दर्यशास्त्र क्यों विकसित करना चाहते हैं। इस चिन्ता के पीछे संस्कारगत भावना और सोच काम करती है।

कला और साहित्य में सौन्दर्यबोध जहाँ संस्कारजन्य होता है, वहीं परिवेशगत भी। पसन्द–नापसन्द, जीवन–मूल्यों का आधार बनती है। दलित साहित्य सिर्फ एक साहित्यिक आन्दोलन भर नहीं है। दलित समाज की सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनीतिक अकांक्षाएं साहित्य की भाषा में व्यक्त हो रही हैं। इसीलिए वह हिन्दी की मुख्यधारा के उस सौन्दर्यशास्त्र के वर्चस्व से मुक्त है, जो संस्कृत के काव्यशास्त्र से जुड़ा है।

कोई भी सौन्दर्यशास्त्र एक दिन में नहीं बनता। प्रतिरोध और विकल्प का सौन्दर्यशास्त्र तो और भी नहीं। वैसे तो हिन्दी में कोई विकसित सौन्दर्यशास्त्र नहीं हैं, लेकिन जो है उसके पीछे एक और संस्कृत के काव्यशास्त्र की लम्बी परम्परा है तो दूसरी ओर पश्चिम के सौन्दर्यशास्त्र का प्रभाव। स्वयं पश्चिम में सौन्दर्यशास्त्र का विकास कई सदियों में हुआ है। जो लोग कहते हैं कि सौन्दर्यशास्त्र का जाति, वर्ग और विचारधारा से क्या लेना–देना, वे या तो बेवकूफ हैं या बदमाश। सौन्दर्यशास्त्र कला की अलौकिक अनुभूति नहीं है। वह कलात्मक सौन्दर्य के बोध और मूल्यों का शास्त्र है, और बोध की प्रक्रिया तथा मूल्यों के निर्माण में जाति, वर्ग और लिंग से जुड़ी विचारधाराओं की महत्वपूर्ण भूमिका होती हैं... इसलिए दलित सौन्दर्यशास्त्र का विकास दलित समाज, उसकी चेतना, संस्कृति, विचारधारा और दलित सौन्दर्यशास्त्र के विकास पर निर्भर है, जो एक लम्बी प्रक्रिया में होगा।

दलित साहित्य समस्त प्रकार के शोषण के विरुद्ध एक ऐसा सौन्दर्यबोध विकसित करता है जो इंसान को अपने मुक्ति युद्ध का योद्धा बनाता है, जो उसे संघर्ष के लिए विकसित और पुष्ट करता है। इस सौन्दर्यबोध की तह में यह स्पष्ट देखा जा सकता है कि समाज को बदलने वाली, सत्ता पलटने वाली प्रत्येक प्रकार की लूट–खसोट का ध्वंस करने वाली शक्ति एक अग्नि के समान जगमगाने लगती है। इसी संघर्षशील सौन्दर्यबोध से युक्त कला मानव के मुक्ति युद्ध को पूरी तरह समर्पित हो जाती है। यह सौन्दर्यबोध मनुष्य के विकास की अग्रगामी शक्ति है। मनुष्य जीवन का कोई अंग ऐसा नहीं है जो साहित्याभिव्यक्ति के अनुपयुक्त हो।

मानव के व्यक्तित्व का विकास सामाजिक संगठन के विस्तार और विकास के साथ ही सम्भव हुआ है। समाज के बाहर उसके व्यक्तित्व की संपन्नता को बनाए रखना असंभव है। साहित्य की किसी बुनियादी समस्या पर विचार करते समय साहित्य, समाज और इतिहास प्रक्रिया के बच्चों पर ध्यान देना आवश्यक है। साहित्य के स्वरूप उद्देश्य और विकास का सामाजिक विकास से गहरा संबंध है। साहित्य मानव समाज के विकास का परिणाम है और प्रमाण भी। वह मनुष्य की सामाजिक चेतना की उपज है। प्रेमचन्द जीवन और साहित्य का संबंध इतना घनिष्ठ मानते हैं कि

वे उस रचना को साहित्य मानने के लिए तैयार नहीं जिसमें जीवन की सच्चाई न हो। उनका स्पष्ट कथन है – ''साहित्य उसी रचना को कहेंगे, जिसमें कोई सच्चाई प्रकट की गई हो और उसमें दिल और दिमाग पर असर डालने का गुण हो और साहित्य में यह गुण पूर्ण रूप से उसी अवस्था में उत्पन्न होता है, व्यक्त में जब उसमें जीवन की सच्चाईयाँ और अनुभूतियाँ व्यक्त की गयी हैं।''[7]

सौन्दर्य की गतिशीलता एवं यथार्थ जीवन से संबद्धता को सभी प्रगतिशील साहित्यकारों ने स्वीकार किया है। सौन्दर्य एक गतिशील (Dynamic) वस्तु है, वह जड़ (Static) नहीं। उसकी गतिशीलता प्रत्येक क्षण अपनी सापेक्षता ग्रहण करती है। जब तक उस सापेक्षता को उतनी गति के साथ ग्रहण नहीं किया जायेगा, तब तक उसके होने या न होने का कोई अर्थ नहीं है। इसलिए सौन्दर्य स्वयं कोई शक्ति नहीं है वरन् वह जीवन के साथ विकसित होता और यथार्थ में ही वह अधिक सशक्त और प्रेरणीय होता है।

दलित साहित्य के स्वरूप, उसके परिप्रेक्ष्य व सम्बन्ध में अब अधिक तर्क–वितर्क की संभावनाएं नहीं हैं। दलित साहित्य अब साहित्यिक विधाओं का अलग–थलग सा कोई अजूबा नाम नहीं है, अपितु नवयुग का एक व्यापक वैज्ञानिक व यथार्थपरक संवेदनशील साहित्यिक हस्तक्षेप हैं। जो कुछ भी तर्कसंगत, वैज्ञानिक, परंपराओं व पूर्वाग्रहों से मुक्त साहित्य–सृजन है हम उसे दलित साहित्य के नाम से संज्ञायित करते हैं। दलित साहित्य सामाजिक बदलाव का दस्तावेज है। दलित साहित्य सृजन में चेतना की अपरिहार्यता व उपयोगिता आवश्यक ही नहीं, बल्कि अपरिहार्य है। दलित साहित्य में दलितों की अस्मिता व अस्तित्व का संघर्ष शब्दों के माध्यम से आकार पाता है। दलित साहित्य के सौन्दर्यशास्त्र का रूप विधायन, उसका सीमांकन व आकलन सामान्य सौन्दर्यदृष्टि से संभव ही नहीं है। दलित साहित्य परंपरागत कलात्मकता से इतर अनगढ़ व अटपटे शब्दों में सामाजिक अन्याय के विरुद्ध आक्रोश, सामाजिक परिवर्तन के आह्वान, उत्पीड़न शोषण के विरुद्ध विद्रोह का साहित्य है। दलित साहित्य का सौन्दर्य वहीं निखरता है, जहाँ सदियों के संताप, जो दलितों ने सहे हैं, यथार्थ के धरातल पर अभिव्यक्ति पाते हैं। दलित साहित्य का सौन्दर्य काल्पनिक, रोमांटिक, रंगीनियाँ नहीं, अपितु घटनाओं का खुरदरापन अपने यथार्थ रूप प्रस्फुटित होता है।

सवर्ण साहित्यकार समाज व विज्ञान की वहिर्गत सौन्दर्य साधना मुक्त होकर मानव समाज को आंतरिक जीवन की सौन्दर्य साधना पर आरोपित व आरूढ़ करना चाहता है। उसकी सौन्दर्यवृत्ति में एक काल्पनिक रंगीनी होती है। वह वस्तु के अर्न्तनिहित सौन्दर्य के अन्वेषण में गतिशील रहता है जबकि दलित साहित्य का सर्जक सामाजिक सरोकारों से जुड़कर जीवन की विषमताओं, धार्मिक विसंगतियों, शोषण के लिए निर्मित कृत्रिम उपादानों तथा मानव–मानव के मध्य बने अंतराल को मापने का प्रयास करता है। वह प्रकृति के लीला व्यापारों में खोकर किसी रहस्यमयी अलक्षित शक्ति का पाखंडपूर्ण गुणगान अथवा आह्वान न कर प्राकृत उपादानों पर भी वर्ग विशेष के वर्चस्व के विरुद्ध आक्रोश व्यक्त करता है।

डॉ. धीरेन्द्र वर्मा द्वारा संपादित हिंदी साहित्यकोश में वर्णित है कि ''सौन्दर्य–वृत्ति अथवा सौन्दर्य–चेतना का प्रमुख वैशिष्ट्य है औत्सुक्य, कौतूहल, जिज्ञासा। निरंतर परिवर्तनशीलता अथवा प्रवाह के प्रति इस प्रवाह के साथ–साथ विभिन्न अवस्थाओं मे अविच्छिन्न एकता और साहचर्य''[8], जबकि दलित साहित्य की सौन्दर्य दृष्टि में होती है, उत्पीड़न–पीड़ा व उसके विस्तार का निरपेक्ष आकलन, धार्मिक पाखंडों व निहित स्वार्थवश शोषण के उपादानों के प्रति घृणा, एक राजग मानवीय अस्मिता, समत्वबोध, सामाजिक अन्याय के प्रति प्रतिकार का सामर्थ्य, सामाजिक के परिवर्तनों के प्रति अडिग आस्था व परंपरागत घृणित व्यवस्थाओं के विच्छेदन की सफलता का विश्वास। दलित साहित्य में नारी रूप की दीप्ति–सुकुमारता, कोमलता बड़ी–बड़ी आँखों अथवा लाल–लाल गालों से नहीं निखरती, अपितु श्रम से निःसृत स्वेदकण ही उसके सौन्दर्य के परिमाप का निर्धारण करते हैं। यहाँ रमणीय ईश्वर व तद्विषयक प्रभामंडित कल्पना नहीं होती, और न ही होती है आत्मविषयक थोथी झूठी परिकल्पना।

मानव जिन स्थितियों से गुजरता है वहीं उसकी अंतः प्रेरणा का निर्धारण करती है। दलित साहित्य की अंतः प्रेरणा का निर्धारण उत्पीड़न की संत्रास एवं संताप त्रासदी को आत्मसात कर उसके प्रत्यक्षीकरण से ही होगी।

पंडित जगन्नाथ की मान्यता ''वाक्यं रसात्मकं काव्यं''[9] वाणी की रसात्मकता ही काव्य है यह भी दलित साहित्य के सौन्दर्यशास्त्र की रूपरेखा से कोसों दूर है। दलित साहित्य के सौन्दर्यशास्त्र वाक्यों की रसात्मकता, कलात्मकता व अलंकरण की उपेक्षा कथ्य को महत्व प्रदान करता है। प्रवंचित, उपेक्षित, प्रताड़ित, शोषित याने दलित को लेकर की गई साहित्यिक सर्जना रसात्मकता अभाव में भी अपना समय प्रभाव छोड़ती है। दलित साहित्य के सौंदर्यशास्त्र के अनुसार प्रेम, सौन्दर्य व आध्यात्म को लेकर अब तक सृजित विशाल रसात्मक साहित्य निरर्थक तथा समाज के लिए अनुपयोगी है। सौन्दर्य के पुरातन मानदंडों को लेकर दलित साहित्य को नकारने की साजिश अब नहीं चलने वाली है। दलित साहित्य काव्यशास्त्रीय पद्धतियों, काव्यचेतना, मान्यताओं व वर्जनाओं का कोई बन्धन नहीं स्वीकार करता। वह प्राच्य व पाश्चात्य सौन्दर्यनिरुपण पद्धतियों को नकारता है। दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र महान यूनानी विचारक सुकरात के इन विचारों का अनुगामी है, ''गोबर से भरी टोकरी भी सुन्दर बन जाती है, यदि वह अपना कुछ उपयोग रखती है। जबकि स्वर्णढाल भी असुंदर है, यदि वह उपयोग की दृष्टि से अपूर्ण है।''[10] सुकरात की इस विचारधारा के अनुसार अधिकतम हिंदी साहित्य निरर्थक एवं अनुपयोगी सिद्ध होता है।

सौन्दर्यदृष्टि वस्तुनिष्ठ होने के साथ–साथ व्यक्ति विशेष के अनुसार व्यक्तिनिष्ठ भी होती है। यह व्यक्तिगत आशाओं, आकांक्षाओं व रुचि पर भी आधारित है। एक ही वस्तु किसी की दृष्टि में सुखद एवं सुगढ़ हो सकती है तथा अन्य की दृष्टि में कुरूप। दलित साहित्य के सौन्दर्यशास्त्र के अनुसार निर्माण अथवा सृजन के साथ–साथ कलात्मकता का होना अनिवार्य नहीं है। दलित साहित्य का सर्जक सामाजिक विद्रूपताओं के विकर्षण को समग्र रूप में उभारता है और वहीं उसकी प्रभावशाली सृष्टि या सृजन भी है।

.प्रकृति के सभी उपादान चाहे यह फूल हो अथवा कांटे, चाहे पौधे की हरीतिमा हो अथवा पीतपन, दलित साहित्य के सर्जकों ने किसी भी माध्यम से अपनी कलात्मकता के मानदंड निर्धारित नहीं किए हैं। उसका विषय क्षेत्र अत्यंत व्यापक है। वह सामाजिक विसंगतियों, विषमताओं असमानताओं के क्रोड़ से अपनी क्रूर यातनाओं, बहुन बेटियों की लुटती आबरू, भूख से बिलबिलाते दूधमुंहे नौनिहालों, सर पर छतों से महरूम फटेहाल आदमियों, जाति–पांति की गलीज विचारधाराओं, कमजोरों के विकास पथ के अवरोधों, धर्म के नाम पर नुचती देवदासियों, धार्मिक पाखण्डों एवं अंधविश्वासों के सहारे बनाए गए कौम की कौम के दासों को अपने साहित्य में रूपापित करता है। दलित साहित्य का सर्जक व्यवस्था का भुक्तभोगी वही आम दलित आदमी है जिसने स्वयं ही शोषण एवं यंत्रणा को सहा है। वह अपने इर्द–गिर्द फैले शोषण के अंतहीन जाल को अपनी लेखनी के माध्यम से तार–तार कर देना चाहता है। उसमें जन्मजात आक्रोश का भाव है। उसका तेवर और उसकी व्यवस्था परिवर्तन की तिलमिलाहट ही दलित साहित्य के सौन्दर्यशास्त्र की एक विशिष्ट रूपरेखा प्रदान करती है। दलित साहित्य–सृजन को प्राच्य सौन्दर्यशास्त्र

के मानदण्डों पर कसकर उसे खारिज करने का प्रयास दलित साहित्य के नव अंकुरण को बाधित नहीं कर सकेगा। दलित साहित्य ने अपने पाठक, श्रोता व अपना सौन्दर्यशास्त्र विकसित कर लिया है। दलित साहित्य का रसास्वादन रसात्मकता की परंपरागत विचारधारा से ऊपर उठकर आदमीयत की भावभूमि पर स्थिति निरपेक्ष व्यक्ति ही कर सकता है। दलित साहित्य का सौन्दर्य वहीं निखरता है जहाँ साहित्यकार धार्मिक, रूढ़ियाँ सामाजिक अन्याय एवं विसंगतियों को प्रखर वाणी देता है। उसका प्रस्तुतिकरण जिस सीमा तक सामाजिक तथा धार्मिक विद्रूपताओं के प्रति घृणा जुगुप्सा अथवा जागृत करने में सफल होता है वहीं उसके साहित्यिक सौन्दर्य का निर्धारण भी करता है। दलित साहित्य ने अपने सौन्दर्यशास्त्र के कोई कृत्रिम मानदंड निर्धारित नहीं किए हैं और न ही कलात्मकता का कोई आवरण ही ओढ़ा है। छोटी–छाटी घटनाओं एवं लघुता के प्रति दृष्टिपात, ज्वलंत सामाजिक समस्याओं, वंचितों, भूखों, बेघरों, फुटपाथ तथा झुग्गी–झोपड़ियों में निवास करने वालों, पेट की भूख में जलते श्रम से बोझिल दलितों, पुरुष की यातनाओं से कराहती नारियों, वर्ण व्यवस्था से उपजी अमानवीयताओं, शोषण के सभी रूपों, शोषकों के घृणित अमानवीय चरित्रों को उकेरना ही उसके साहित्य का उद्देश्य है। दलित साहित्य केवल नकार का साहित्य नहीं है। साहित्यिक परम्पराओं एवं मानदंडों अथवा साहित्य के सौन्दर्यशास्त्र के कृत्रिम स्थापन से दूर दलित साहित्य स्वतंत्रता, समानता व बंधुत्व का साहित्य है। महाराष्ट्र के प्रख्यात दलित साहित्यकार बाबूराव बागुल अनुसार ''दलित साहित्य का केन्द्रबिन्दु मानव है और वह मानव के इर्द–गिर्द ही घूमता है।''[11]

दलित साहित्य लेखन की प्रेरणा का मूल उत्स तथागत बुद्ध, गुरु रैदास सन्त कबीर, महात्मा ज्योतिबा फुले, डॉ. भीमराव अम्बेडकर, श्री नारायण शुरू, इ.वी. रामास्वामी नायकर तथा स्वामी अछूतानन्द के सामाजिक समता संघर्ष से निःसृत सामाजिक परिवर्तन की समतामूलक विचारधारा है। इस विचारधारा ने कुछ गैर–दलित लेखकों को भी प्रभावित किया जिसके फलस्वरूप उन्होंने दलित समस्याओं को लेकर साहित्य–सृजन का असफल प्रयास किया। अमृतलाल नागर का नाच्यौ बहुत गोपाल, गिरिराज किशोर का परिशिष्ट, धूमिल का मोचीराम, नागार्जुन का हरिजन गाथ आदि भोक्ता एवं दृष्टा की दृष्टि में मूलभूत अंतर के कारण अपना प्रभाव नहीं छोड़ पाए। इनमें अनुभूतिजन्य सृजन इतर सहानुभूतिपूर्वक सृजन की रेखाएं स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होती हैं। यहाँ दलितों की व्यथा को यथार्थ तथा सजीव अभिव्यक्ति नहीं मिल पाई है।

दलित साहित्य ने अपनी संजीव संवेदनाओं की अभिव्यक्ति की एक पृथक एवं स्वतन्त्र शैली विकसित कर ली है। इसी में ही दलित चेतना की संवाहक शक्ति है तथा दलित चेतना के तेवर को सम्पूर्ण ऊर्जा के साथ प्रस्तुतीकरण की सामर्थ्य भी। इसे बनावटी एवं कृत्रिम परहेज है तथा अलंकरण की भी, खास जरूरत नहीं है जो कुछ भी है सीधा–सपाट एवं अनगढ़, जो कि अन्दर तक सीसा–सा पिघलता चला जाए। दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र इन सबको लेकर ही अपना एक पृथक एवं जीवंत आकार पाता है। सदियों से शोषित, सोए, निराश, मुरझाए मनों में उत्साह व ऊर्जा का संचरण ही इसका एकमात्र उद्देश्य है। इसमें हमें शिल्पगत या भाषागत सौन्दर्य नहीं मिलता; अपितु मिलती है दलितों के विकास एवं सामाजिक परिवर्तन की एक नवीन क्रान्तिकारी विचारधारा। दलित साहित्य के सौन्दर्य का आंकलन एवं परीक्षण इसकी अभिव्यक्तिगत सफलता से ही किया जा सकता है। साहित्य के माध्यम से भोगी हुई व्यवस्था–जन्य वितृष्णा को उभार देना, सुषुप्त संवेदनाओं में आग भर देना, अंधविश्वासों और पाखंडों को समूल उखाड़ फेंकना, दलितों–शोषितों के मौन को वाणी देना, कलुषित परंपराओं को तार–तार कर जातिपरक असमतामूलक गंदी बजबजाती सामाजिक काई को खंगाल देना ही दलित साहित्य की रचनाधर्मिता, दलित साहित्य सौन्दर्य का उत्कर्ष व उसके सौन्दर्यशास्त्र का प्रतिपाद्य है। डॉ. सी.बी. भारती के अनुसार तो सामाजिक दायित्वों से जुड़ी रचनाधर्मिता व उसके प्रति सच्ची प्रतिबद्धता ही दलित साहित्य का सौन्दर्य विधान है। दलित साहित्य लेखन दलित अस्मिता की तलाश है। वह सामाजिक विश्लेषण की सतत् प्रक्रिया व स्थापित मान्यताओं के पुर्नपरीक्षण व उनके छिन्न–भिन्न कर देने की एक अनबुझी प्यास है। वर्णव्यवस्था से उपजी अमानवीय त्रासदी से मुक्ति की छटपटाहट ही दलित साहित्य का मूल स्वर है। यह साहित्य की खोई संवेदनाओं को कुरेदने, उकेरने व उन्हें शक्ति देने का व्यापक प्रयास है।, जातिविहीन, वर्गहीन, समाज की संरचना ही इसका मूल प्रतिवाद्य है। यथास्थितिवाद के विरुद्ध यह परिवर्तन की हुंकार व सफल सुगबुगाहट है। अब दलित साहित्य अमर्यादित होकर सवर्ण मात्र व ब्राह्मणवाद को गाली गलोच का ही साहित्य नहीं है। नाटक, कहानी, उपन्यास, कविता, लेख, संस्मरण, जीवन–चरित्र सभी विधाओं में दलित साहित्यकार साहित्य–सृजन की ओर अग्रसर है। दलित साहित्य का बहुआयामी व व्यापक फलक अब हमारे सामने है। बाबुराव बागुल, दया पवार, नारायण सुर्वे, शरणकुमार लिंबाले, ओमप्रकाश वाल्मिकी, मोहनदास नैमिशराय, डॉ. एन. सिंह, डॉ. सी.बी. भारती, श्यौराज सिंह बेचैन, जय प्रकाश कर्दम, डॉ. कुसुम मेघवाल, डॉ. दयानंद बटोही, डॉ. तारा परमार, डॉ. कुसुम वियोगी, सुश्री रमणिका गुप्ता, डॉ. सुशीला टांकभोरे, डॉ. देवेन्द्र दीपक का साहित्य सदियों के संताप, संघर्ष व जिजीविषा की ऊर्जा को अपने में संजोये हुए हैं। दलित साहित्य में आप शब्दों का लालित्य, प्रेम का अवसाद, कोरा रोमांस, आध्यात्मिकता के रास रंग, अलंकारों व छन्दों की दिमागी कसरत नहीं पायेंगें, अपितु पाएंगे यातना व त्रासदी से उपजे गरम सुलगते सवाल व एक सशक्त साहित्यिक हस्तक्षेप।

दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र साहित्यिकता का मोहताज नहीं है अपितु इसकी जीवनी शक्ति है घटनाओं की जीवंतता एवं उनकी प्रमाणिकता तथा इसका प्रयोजन है दलित चेतना एवं सामाजिक न्याय की भावना का निरंतर विकास। दलित–पीड़ा को सफल अभिव्यक्ति प्रदान कर दलित साहित्य ने सौन्दर्यशास्त्र की सार्थकता को प्रमाणित कर दिया है। उधार की परंपरागत सौन्दर्यदृष्टि से दलित साहित में सौन्दर्य निरुपण कठिन ही नहीं असंभव भी है। परंपरागत बासी पड़ चुके निर्जीव मानदंडों को तोड़कर ही दलित साहित्य ने अपना सौन्दर्यशास्त्र विकसित किया है। दलित साहित्य में उस व्यवस्था के प्रति विद्रोह का स्वर मुखरित है जो एक मनुष्य को दूसरे मनुष्य से जाति के आधार पर छोटा बनाती है एवं उन्हें जीवन–पर्यन्त उसके छोटेपन का एहसास कराती है। यह विद्रोह उनके विरुद्ध भी है जिन्होंने अपने कुत्सित स्वार्थों की पूर्ति हेतु कृत्रिम व्यवस्थाएं निर्मित कर सदियों से लाभ उठाया एवं अब भी साधन संपन्न एवं सुखद स्थिति में है तथा वह अब भी दलित समुदाय का शोषण कर रहे हैं।

दलित साहित्य की सार्थकता एवं स्थायित्व हेतु उसका स्वनिर्मित सौन्दर्यशास्त्र अब पूर्ण विकास पर है। इसकी उपयोगिता एवं प्रासंगिकता का आंकलन विभिन्न प्रतिष्ठित हिंदी पत्र–पत्रिकाओं द्वारा प्रकाशित किए जा रहे दलित साहित्य विशेषांकों द्वारा एवं हिंदी साहित्य में इसके सशक्त हस्तक्षेप एवं उत्पन्न हलचल से स्वतः किया जा सकता है। दलित साहित्य शब्द विलास का नहीं अपितु आवश्यकता का साहित्य है। डॉ. मुल्कराज आनन्द ने 11 नवंबर 1964 को प्रगतिशील लेखक संघ के दिल्ली अधिवेशन में दलित साहित्य की उपोदयता को इन शब्दों में स्वीकारा। आज हमारे देश में कोई सार्थक या उपयोगी लेखन हो रहा है तो वह दलित लेखन हैं।

सहायक ग्रंथ सूची

1. दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र – शरण कुमार लिंबाने, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण–2005, पृ. 106
2. वही पृ. 106
3. वही पृ. 106
4. दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र – ओमप्रकाश वाल्मीकि, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, दूसरा संस्करण–2008,पृ. 48
5. वही पृ. 48
6. वही पृ. 48-49
7. दलित साहित्य और राजनीति –संपादक एन. सिंह, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स लिमिटेड, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण–1017, पृ. 234
8. हिंदी साहित्य कोष (भाग –1) – संपादक – डॉ धीरेन्द्र वर्मा , ज्ञानमण्डल, लिमिटेड , वाराणसी
9. दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र – ओमप्रकाश वाल्मीकि , राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, दूसरा संस्करण–2008, पृ. 48
10. दलित साहित्य और राजनीति – संपादक एन. सिंह, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स लिमिटेड, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण–1017, पृ. 247
11. दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र – ओमप्रकाश वाल्मीकि , राधाकृष्ण प्रकाशन , नई दिल्ली, दूसरा संस्करण–2008